

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में
सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल अपील संख्या 9537/2025
(विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 5559/2023 से उत्पन्न)

राम चरण व अन्य

---अपीलकर्ता

बनाम

सुखराम व अन्य

----उत्तरवादी

निर्णय

संजय करोल, न्यायाधीश के अनुसार

1. अनुमति स्वीकृत की गयी ।
2. यह अपील छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर द्वारा द्वितीय अपील संख्या 465/2009 में पारित दिनांक 1 जुलाई 2022 के निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश (एफटीसी), सूरजपुर, जिला सरगुजा (छ.ग.) द्वारा सिविल अपील संख्या 1ए/08 में पारित दिनांक 21 अप्रैल 2009 के निर्णय एवं डिक्री तथा द्वितीय सिविल न्यायाधीश, वर्ग-2, सूरजपुर, सरगुजा (छ.ग.) द्वारा सिविल वाद संख्या 21ए/08 में पारित दिनांक 29 फरवरी 2008 के निर्णय एवं डिक्री की पुष्टि की गई थी, जिसमें अपीलकर्ता-वादी द्वारा दायर विभाजन के वाद को खारिज कर दिया गया था।
3. इस अपील में संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या एक आदिवासी महिला (या उसके कानूनी उत्तराधिकारी) को अपनी पैतृक संपत्ति में समान हिस्सा मिलेगा या नहीं। कोई सोच सकता है कि आज के समय में, जहाँ समानता के संवैधानिक लक्ष्य को साकार करने में बड़ी प्रगति हुई है, इस न्यायालय को एक ही पूर्वज के उत्तराधिकारियों के बीच समानता के लिए हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं होगी और यह समानता, उनके जैविक अंतरों के बावजूद, दी जानी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है।

4. तथ्य सीमित दायरे में हैं। अपीलकर्ता-वादी, अनुसूचित जनजाति की एक महिला धैया के कानूनी उत्तराधिकारी हैं। उन्होंने अपने नाना, भज्जू उर्फ भंजन गोंड की संपत्ति के बँटवारे की माँग की। उनकी माँ उनके छह बच्चों, पाँच पुत्र और एक पुत्री, में से एक थीं। उन्होंने कहा कि उनकी माँ अनुसूचित संपत्ति में बराबर की हिस्सेदारी की हकदार हैं। वाद का कारण अक्टूबर 1992 में तब उत्पन्न हुआ जब उत्तरवादी संख्या 6 से 16 ने बँटवारा करने से इनकार कर दिया। अपीलकर्ता-वादी ने वाद की संपत्ति के स्वामित्व और बँटवारे की घोषणा के लिए विचारण न्यायालय का रुख किया गया।

5. 29 फ़रवरी 2008 के निर्णय द्वारा, वाद को निम्नलिखित निर्णय देते हुए खारिज कर दिया गया:---

"11. उपरोक्त तीनों वादी गवाहों के तर्कों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने बुआ और उनके पुत्र के अधिकार, अर्थात् पिता की ज़मीन पर पुत्रियों के अधिकार के तथ्य को बताया है। वादियों की ओर से न्यायिक पुनर्विचार हीरा लाल गोंड बनाम सुखबरिया बाई एम.पी. बनाम सं.1993 (भाग-2) 143 प्रस्तुत की गई है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि गोंड जाति के पक्षकारों की प्रथा के अनुसार विधवा और पुत्री का उत्तराधिकार साबित करने पर उन्हें उत्तराधिकार मिल जाएगा। यह न्यायिक पुनर्विचार इस मामले में लागू नहीं होती, क्योंकि वादियों ने अपनी जातिगत प्रथाओं को प्रमाणित नहीं किया है। उन्होंने केवल पुत्रियों के अपने पिता की संपत्ति में अधिकार का दावा करने की बात कही है, लेकिन कौन कह सकता है कि उनके ज्ञान में ऐसा अधिकार किसी विशिष्ट व्यक्ति को दिया गया है। इस संबंध में उत्तरवादीगण की ओर से न्यायिक पुनर्विचार बिहारी बनाम यशवंतिन 1973 आर.एन. 64 प्रस्तुत की गई है, जिसमें माननीय उच्च न्यायालय ने न्यायालय ने कहा कि गोंड जाति के लोग हिंदू रीति-रिवाजों से शासित नहीं हैं, बल्कि उत्तराधिकार सहित सभी मामलों में उनकी विशिष्ट परंपरा से शासित होंगे। परंपरा के प्रमाणीकरण के संबंध में, माननीय न्यायालय का मत है कि केवल परंपरा मात्र का कथन पर्याप्त नहीं है, इसलिए उन्हें वास्तविक घटनाएँ प्रस्तुत की जानी चाहिए।

12. इस प्रकार, उपरोक्त साक्ष्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वादी ने अपनी प्रथा के समर्थन में किसी साक्षी का बयान तक नहीं दिया है। इसके अलावा, उन्होंने अपनी तर्क में जाति परंपरा से अपनी प्रथा के संचालित होने का दावा भी नहीं किया है। वे स्वयं को हिंदू बता रहे हैं और दावा कर रहे हैं कि वे हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के अंतर्गत शासित हैं, जो कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 2 की उपधारा 2 में एक विशिष्ट प्रावधान है कि अनुसूचित जनजाति का सदस्य इस अधिनियम द्वारा शासित नहीं होगा। तदनुसार, वादी वाद

संख्या 1 से 3 को अपने पक्ष में साबित करने में विफल रहे हैं। परिणामस्वरूप, उनका निष्कर्ष 'प्रमाणित नहीं' है।" (जोर दिया गया)

6. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने 21 अप्रैल 2009 के अपने निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की कि अपीलकर्ता-वादी की माता का अपने पिता की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है। ऐसा इसलिए माना गया क्योंकि ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जिससे यह सिद्ध हो कि महिला उत्तराधिकारी के बच्चे भी संपत्ति के हकदार हैं।

7. धारा 100 सिविल प्रक्रिया संहिता, 19083 के तहत एक अपील को विधि के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न पर स्वीकार किया गया है: --

"(1) क्या दोनों विचारण न्यायालय को एक निष्कर्ष दर्ज करके वादी के वाद को खारिज करने में न्यायोचित ठहराया गया था जो कि रिकॉर्ड के विपरीत और विपरीत है?"

8. उच्च न्यायालय ने, प्रथा के प्रथम तर्क के संबंध में पक्षकारों के तर्क पर विचार करने के बाद, यह अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय का निष्कर्ष, **सलेख चंद बनाम सत्य गुप्ता एवं अन्य; रतनलाल बनाम सुंदराबाई गोवर्धनदास संसुका; और अलियाथम्मुडा बीथाथेबियाप्पुरा पूकोया बनाम पट्टाकल चेरियाकोया** में इस न्यायालय के निर्णयों के अनुरूप है। यह अभिनिर्धारित किया है कि संपत्ति के विभाजन की मांग करने वाले अपीलकर्ता-वादी, प्रथा के माध्यम से ऐसी संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने में विफल रहे, यह दर्शाते हुए कि एक महिला उत्तराधिकारी भी उस संपत्ति की हकदार है।

9. अपीलकर्ता-वादी के वकील का दूसरा तर्क यह है कि प्रथा के अभाव में, **दादूराम एवं अन्य बनाम भूरी बाई एवं अन्य** के अनुसार, न्याय, समता और अच्छे विवेक को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।", उक्त न्यायालय की समन्वय पीठ का निर्णय। इस तर्क को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उच्च न्यायालय की समन्वय पीठ को यह सूचित नहीं किया गया था कि 1875 का अधिनियम 30 मार्च 2018 को निरस्त हो गया है। यह बाद का आदेश है जिससे **तिरिथ कुमार बनाम दादूराम** में इस न्यायालय का निर्णय उत्पन्न हुआ।

10. जहाँ तक अपीलकर्ता-वादीगण के इस तर्क का प्रश्न है कि उन्होंने हिंदू परंपराओं को अपनाया था, यह अभिनिर्धारित किया है कि चूँकि इस आशय का कोई साक्ष्य अभिलेख में प्रस्तुत नहीं किया गया था, इसलिए विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस तर्क को उचित रूप से अस्वीकार कर दिया था। उपरोक्त के संदर्भ में, विधि के सारवान प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया गया।

11. इस मामले में, अपीलकर्ता-वादीगण हमारे समक्ष उपस्थित हैं। हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है और उनके लिखित निवेदनों का अध्ययन किया है।

12. हमारे विचार-विमर्श के आरंभ में, यह स्पष्ट किया जाता है कि पक्षकारों द्वारा हिंदू रीति-रिवाजों और जीवन-शैली को अपनाने का प्रश्न अब विचाराधीन नहीं है। इसके अतिरिक्त, हम हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 2(2) पर भी ध्यान दे सकते हैं, जो अनुसूचित जनजातियों को स्पष्ट रूप से अपने अनुप्रयोग से बाहर रखती है।

इसमें लिखा है: "धारा 2(2): उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम में निहित कोई भी बात संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के भीतर किसी अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर तब तक लागू नहीं होगी जब तक कि केंद्रीय सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, अन्यथा निर्देश न दे।"

13. चूंकि हिंदू विधि का कोई अनुप्रयोग नहीं है, इसलिए विचारणीय अगली संभावना प्रथा के अनुप्रयोग की है। किसी प्रथा के अनुप्रयोग को दर्शाने के लिए, उसे सिद्ध करना आवश्यक है, लेकिन वर्तमान मामले में ऐसा नहीं हुआ। वास्तव में, हमारी राय में, निचली अदालतों ने एक पूर्वधारणा को ध्यान में रखकर कार्यवाही की और वह पूर्वधारणा गलत थी। प्रथाओं पर चर्चा का आरंभिक बिंदु अपवर्जन चरण था, जिसका अर्थ है कि उन्होंने यह मान लिया था कि ऐसी जगह एक अपवर्जनात्मक प्रथा है जहाँ बेटियाँ किसी भी उत्तराधिकार की हकदार नहीं होंगी और उन्होंने अपीलकर्ता-वादी से अपेक्षा की कि वे इसके विपरीत सिद्ध करें। एक वैकल्पिक परिदृश्य भी संभव था जहाँ अपवर्जन नहीं, बल्कि समावेशन की परिकल्पना की जा सकती थी और प्रतिवादियों से यह सिद्ध करने के लिए कहा जा सकता था कि महिलाएँ संपत्ति के उत्तराधिकार की हकदार नहीं हैं। यह पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति हिंदू विधि से एक अनुमान प्रतीत होती है, जिसका वर्तमान मामले में कोई स्थान नहीं है।

14. छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने श्रीमान सरवांगो एवं अन्य बनाम श्रीमान उर्चमहिन एवं अन्य ने टिप्पणी की है:---

"10. वर्तमान मामले में, दोनों पक्ष अपनी गोंड जाति, अर्थात् अनुसूचित जाति के सदस्य, जिन पर हिंदू कानून या उत्तराधिकार से संबंधित कोई अन्य विधि लागू नहीं होता, में प्रचलित उत्तराधिकार संबंधी किसी कानून या प्रथा को सिद्ध करने में विफल रहे हैं। उनकी जाति में उत्तराधिकार से संबंधित किसी कानून या प्रथा के अभाव में, न्यायालयों को अधिनियम की धारा

6 के अनुसार न्याय, समता और सद्बिवेक के अनुसार अधिकारों का निर्णय करना आवश्यक है। वादी सवांगो और जैतुनिया, झांगल की पुत्रियाँ हैं, जो प्रतिवादी के निकटतम रिश्तेदार हैं, जो झांगल के भाई की पुत्रवधू और दखल के पुत्र बालम सिंह के वैध या नाजायज पुत्र थे।

11. इन परिस्थितियों में, वादी सवांगो और जैतुनिया अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति के उत्तराधिकारी होने के सर्वोत्तम हकदार होंगे। विचारण न्यायालय को झांगल के हिस्से की सीमा तक विभाजन के वाद का फैसला सुनाना चाहिए था, लेकिन विचारण न्यायालय, अर्थात् अपीलीय न्यायालय, ने अनुसूचित जनजाति के सदस्य के लिए उत्तराधिकार हेतु किसी विधि या प्रथा के अभाव में अपील स्वीकार कर ली है और वाद खारिज कर दिया है। विचारण न्यायालय को छत्तीसगढ़ राज्य और अविभाजित मध्य प्रदेश राज्य पर लागू अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों के अनुसार उनके उत्तराधिकार के अधिकारों का निर्णय करना आवश्यक है।"

(जोर दिया गया)

15. उपरोक्त स्थिति को देखते हुए कि किसी भी पक्ष द्वारा न तो किसी समुदाय के किसी विशेष विधि और न ही किसी प्रथा को लागू किया जा सकता है, अब हम उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तर्क, अर्थात् न्याय, समता और सद्बिवेक के सिद्धांत, की जाँच करते हैं। इन सिद्धांतों को मध्य प्रांत विधि अधिनियम, 1875, धारा 6 में वैधानिक मान्यता प्राप्त है, जिसका अंश नीचे दिया गया है:---

"6. धारा पाँच द्वारा या किसी अन्य वर्तमान कानून द्वारा उपबंधित न किए गए मामलों में, न्यायालय न्याय, समता और सद्बिवेक के अनुसार कार्य करेंगे।"

16. सर्वप्रथम, यह देखा गया है कि 1875 के कानून के संबंध में, आक्षेपित निर्णय में कहा गया है कि इसे मार्च 2018 से निरस्त कर दिया गया है और इसलिए इसे लागू नहीं किया जा सकता। हमें यह स्थिति गलत लगती है। निरसन अधिनियम संख्या 4, 2018, एक व्यावृत्ति खंड का प्रावधान करता है, जो इस प्रकार है:--

"4. व्यावृत्तियाँ। इस अधिनियम द्वारा किसी अधिनियम का निरसन किसी अन्य अधिनियम को प्रभावित नहीं करेगा जिसमें निरसित अधिनियम लागू किया गया है, सम्मिलित किया गया है या संदर्भित किया गया है; और यह अधिनियम पहले से की गई या सहन की गई किसी भी चीज़ की वैधता, अवैधता, प्रभाव या परिणामों को, या पहले से अर्जित, उपार्जित या उपगत किसी भी अधिकार, शीर्षक, दायित्व या देयता को, या उसके संबंध में किसी भी उपाय या कार्यवाही को,

या किसी भी ऋण, दंड, दायित्व, देयता, दावे या मांग से किसी भी रिहाई या उन्मोचन को, या पहले से दी गई किसी भी क्षतिपूर्ति को, या किसी भी पिछले कार्य या चीज के प्रमाण को प्रभावित नहीं करेगा; न ही यह अधिनियम कानून के किसी सिद्धांत या नियम को, या स्थापित क्षेत्राधिकार, अभिवचन के रूप या क्रम, अभ्यास या प्रक्रिया को, या मौजूदा उपयोग, प्रथा, विशेषाधिकार, प्रतिबंध, छूट, कार्यालय या नियुक्ति को प्रभावित करेगा, भले ही उन्हें क्रमशः किसी भी तरह से पुष्टि या मान्यता दी गई हो या किसी भी अधिनियम से या उसके द्वारा व्युत्पन्न किया गया हो; न ही इस अधिनियम द्वारा किसी अधिनियम का निरसन किसी भी क्षेत्राधिकार, कार्यालय को पुनर्जीवित या बहाल करेगा, प्रथा, दायित्व, अधिकार, उपाधि, विशेषाधिकार, प्रतिबंध, छूट, उपयोग, प्रथा, प्रक्रिया या अन्य मामला या चीज जो अब विद्यमान या लागू नहीं है।"

(जोर दिया गया)

17. धारा 4 का प्रभाव स्पष्ट है कि अधिनियम के निरसन से पूर्व अर्जित कोई भी अधिकार इससे प्रभावित नहीं होगा। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, तात्कालिक लिस के पक्षकार न तो हिंदू और न ही मुस्लिम कानूनों द्वारा शासित हैं और इसलिए, वे 1875 के अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत आएंगे। इसलिए, यह अधिकार अपीलकर्ता-वादी की मांग के पक्ष में उनके पिता की मृत्यु पर अर्जित हुआ था, जो कि वाद दायर करने से लगभग 30 वर्ष पूर्व था, और इस तथ्य से प्रभावित नहीं होगा कि अधिनियम अब कानून की किताब में नहीं है। इसलिए, इस अधिनियम को उच्च न्यायालय द्वारा अनिवार्य रूप से लागू किया जाना था। इस मोड़ पर, 'न्याय, समानता और अच्छे विवेक' के अर्थ पर विचार करना उचित है।

18. विधि में यह प्रचलित है कि इस सिद्धांत को केवल तभी लागू किया जा सकता है जब कोई शून्य हो या दूसरे शब्दों में, उस पहलू को नियंत्रित करने वाले किसी विधि का अभाव हो। चूंकि ऐसी कोई प्रथा नहीं थी कि महिलाओं को संपत्ति का अधिकार था, इसलिए इसका अनुप्रयोग इस स्थिति के अनुरूप होगा। 'न्याय, समता और अच्छे विवेक' वाक्यांश का वास्तव में क्या अर्थ है, इस पर इस न्यायालय ने कुछ अवसरों पर विचार किया है। हम कुछ उदाहरणों का उल्लेख कर सकते हैं:

(क) नीमला टेक्सटाइल फिनिशिंग मिल्स लिमिटेड बनाम द्वितीय पंजाब ट्रिब्यूनल में, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यह सिद्धांत श्रम विवादों के संदर्भ में भी लागू किया जा सकता है, जब तक कि विचाराधीन प्रश्न पर विधि को संहिताबद्ध नहीं

किया जाता है क्योंकि रोजमर्रा के कामकाज में कई स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनका पूर्वानुमान लगाना और मुख्य कानून में उनका हिसाब रखना विधायिका के लिए संभव नहीं है।

(ख) 'न्याय, समता और सद्विवेक' का सिद्धांत कोई नया प्रयोग नहीं है। जैसा कि न्यायमूर्ति जे.सी. शाह ने प्रदर्शित किया, पूर्व ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र में कार्यरत न्यायालय भी उक्त सिद्धांत को लागू करने में सक्षम थे। देखें, सुपरिंटेंडेंट एंड रिमेंबरेंसर ऑफ लीगल अफेयर्स बनाम कलकत्ता निगम।

(ग) इस सिद्धांत पर इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा एम. सिद्दीक बनाम सुरेश दास (राम जन्मभूमि मंदिर) में दिए गए निर्णय में विस्तृत चर्चा हुई, जिसके प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं: "आज न्याय, समता और सद्विवेक –

1019. हिंदू संहिता और शरीयत अधिनियम, 1937 में रीति-रिवाजों के क्रमिक संहिताकरण सहित, वैधानिक कानून और न्यायिक मिसाल के विकास के साथ, न्याय, समता और सद्विवेक पर भरोसा करने की आवश्यकता धीरे-धीरे कम होती गई। जब किसी कानून के तहत स्थापित सैद्धांतिक स्थितियाँ तथ्यात्मक स्थितियों को कवर करती हैं या जहाँ संबंधित व्यक्तिगत कानून की व्यवस्था के अंतर्निहित सिद्धांतों को निश्चित रूप से सुनिश्चित किया जा सकता है, तो न्याय, समता और सद्विवेक के अनुप्रयोग की गुंजाइश (कम से कम सिद्धांत रूप में) कम हो जाती है। लेकिन फिर भी, किसी ऐसे सिद्धांत को अपनाना न्यायिक शिल्प के साथ अन्याय होगा जो कानून द्वारा शासित कानून के क्षेत्रों में न्याय, समता और सद्विवेक के अनुप्रयोग को बाहर करता है। क्योंकि कानून अंतरालीय रूप से विकसित होता है, क्योंकि न्यायाधीश न्यायपूर्ण परिणामों पर पहुँचने के लिए कानून के साथ मिलकर काम करते हैं। जहाँ पक्षकारों के अधिकार किसी विशेष वैयक्तिक विधि द्वारा शासित नहीं होते हैं, या जहाँ वैयक्तिक विधि मौन है या न्यायालय द्वारा उसका पता लगाना असम्भव है, जहाँ संहिता में कोई कमी है, या जहाँ विधि का स्रोत विफल हो जाता है या उसे पूरक करने की आवश्यकता होती है, वहाँ न्याय, समता और अच्छे विवेक का उचित रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

1022. सामान्य अंतर्निहित सूत्र यह है कि न्याय, सद्विवेक और समता, न्यायालयों को न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित करने के मुख्य उद्देश्य से, न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुरूप राहत प्रदान करने में सहायक भूमिका निभाते हैं। जहाँ न्यायालयों के समक्ष विवाद का निर्णय करने के लिए विद्यमान वैधानिक ढाँचा अपर्याप्त है, या किसी स्थापित न्यायिक सिद्धांत या प्रथा का लाभ नहीं उठाया जा सकता है, वहाँ न्यायालय मामले का प्रभावी

और निष्पक्ष निराकरण करने के लिए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों का वैध रूप से सहारा ले सकते हैं। कोई न्यायालय केवल इसलिए विधिक अधिकारों पर विवाद का निर्णय करने की अपनी ज़िम्मेदारी से नहीं बच सकता है क्योंकि मामले के तथ्य विद्यमान विधि के मूल स्वरूप के अनुप्रयोग के लिए सहज रूप से प्रस्तुत नहीं होते। भारत में न्यायालयों ने पक्षों के बीच न्याय करने के लिए विधिक विवादों की जमीनी हकीकतों के साथ विधि के मूल स्वरूप की अपूर्णता और अनुपयुक्तता को पूरक करने के लिए लंबे समय से न्याय, सद्विवेक और समता के सिद्धांतों का लाभ उठाया है। न्याय के एक आवश्यक घटक के रूप में, समता, विवादों के न्यायसंगत निर्णय में अंतिम चरण का गठन करती है। विभिन्न न्याय प्रणालियों के विधिक सिद्धांतों, विषय पर विद्वत्तापूर्ण लेखन, और बार व बेंच के अनुभव का सहारा लेने के बाद, यदि कोई निर्णायक या न्यायसंगत परिणाम नहीं निकलता है, तो न्यायाधीश न्याय सुनिश्चित करने के लिए पक्षों के बीच समता के सिद्धांतों को लागू कर सकता है। यह अक्सर न्यायालय की उस शक्ति में रूप पाया गया है जिससे वह ऐसे राहत प्रदान कर सके जो विधिक रूप से स्थायी और न्यायसंगत दोनों हों।" (जोर दिया गया)

(घ) तिरिथ कुमार (सुप्रा) मामले में, जो छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के एक निर्णय से उत्पन्न एक अपील भी थी, इस न्यायालय को हममें से एक (न्यायमूर्ति संजय करोल) के माध्यम से इस सिद्धांत के अनुप्रयोग पर विचार करने का अवसर मिला और इसके अनुसार, महिला उत्तराधिकारियों को संपत्ति पर अधिकार प्रदान करने के उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई।

19. न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को लागू करते समय, न्यायालयों को उपरोक्त बातों का ध्यान रखना होगा और इस अन्यथा मुक्त सिद्धांत को सुसंगत रूप से लागू करना होगा। वर्तमान मामले में, यदि विचारण न्यायालय के विचारों को बरकरार रखा जाता है, तो किसी महिला या उसके उत्तराधिकारियों को, प्रथा में ऐसी विरासत के सकारात्मक दावे के अभाव के आधार पर संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा। हालाँकि, प्रथाएँ भी, विधि की तरह, समय में अटकी नहीं रह सकती हैं और दूसरों को प्रथाओं की शरण लेने या उनके पीछे छिपकर दूसरों को उनके अधिकार से वंचित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

20. इस सामान्य सिद्धांत के अनुप्रयोग के अलावा, हम इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का भी प्रश्न मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल पुरुषों को अपने पूर्वजों की संपत्ति पर उत्तराधिकार प्रदान करने के लिए कोई तर्कसंगत संबंध या उचित वर्गीकरण नहीं है,

महिलाओं को नहीं, और भी अधिक ऐसे मामले में जहाँ इस तरह का कोई निषेध कानून के अनुसार प्रचलित नहीं दिखाया जा सकता है। अनुच्छेद 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। यह, अनुच्छेद 38 और 46 के साथ, संविधान के सामूहिक लोकाचार की ओर इशारा करता है जो यह सुनिश्चित करता है कि महिलाओं के साथ कोई भेदभाव न हो।

21. वेस्टर्न यू.पी. इलेक्ट्रिक पावर एंड सप्लाय कंपनी लिमिटेड बनाम यू.पी. राज्य में, यह टिप्पणी की गई थी:---

“7. संविधान का अनुच्छेद 14 समानों के बीच समानता सुनिश्चित करता है; इसका उद्देश्य समान स्थिति वाले व्यक्तियों को भेदभावपूर्ण व्यवहार से बचाना है। हालाँकि, यह तर्कसंगत वर्गीकरण के विरुद्ध कार्य नहीं करता है। कानून द्वारा समान व्यवहार से वंचित करने की शिकायत दर्ज करने वाले व्यक्ति को यह स्थापित करना होगा कि समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के बीच, कुछ के साथ उनके पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया गया और इस विभेदकारी व्यवहार का कानून द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई उचित संबंध नहीं था...”

22. इस न्यायालय ने एयर इंडिया बनाम नर्गेश मिर्ज़ा¹⁴ के महत्वपूर्ण मामले में, अनुच्छेद 14 के संबंध में, अन्य बातों के अलावा, निम्नलिखित प्रस्ताव रखे:---

“39. इस प्रकार, 1952 से लेकर आज तक इस न्यायालय के मामलों के विस्तृत विश्लेषण और गहन परीक्षण से, निम्नलिखित प्रस्ताव सामने आते हैं:---

(2) अनुच्छेद 14 शत्रुतापूर्ण भेदभाव का निषेध करता है, लेकिन उचित वर्गीकरण का नहीं। इस प्रकार, जहाँ किसी विशेष वर्ग के व्यक्तियों के साथ उनके विशेष गुणों, गुणों, भर्ती के तरीके आदि के आधार पर, पिछड़े वर्गों के सदस्यों को आगे बढ़ाने और बढ़ावा देने के लिए जनहित में अलग व्यवहार किया जाता है, वहाँ ऐसा वर्गीकरण भेदभाव नहीं माना जाएगा, क्योंकि इसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों से घनिष्ठ संबंध है, इसलिए ऐसे मामलों में अनुच्छेद 14 पूरी तरह से अप्रासंगिक हो जाएगा।

(3) अनुच्छेद 14 निश्चित रूप से वहाँ लागू होता है जहाँ समानों के साथ बिना किसी उचित आधार के अलग व्यवहार किया जाता है।

(4) जहाँ समानों और असमानों के साथ अलग व्यवहार किया जाता है, अनुच्छेद 14 का कोई अनुप्रयोग नहीं होगा।...”

23. मेनका गांधी बनाम भारत संघ 5 में, यह टिप्पणी की गई थी:-----

"7. अब, यह प्रश्न तुरंत उठता है कि अनुच्छेद 14 की क्या आवश्यकता है: इस अनुच्छेद में प्रतिपादित महान समानतावादी सिद्धांत की विषयवस्तु और पहुँच क्या है? इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह संविधान का एक आधारभूत विश्वास है। यह वास्तव में वह स्तंभ है जिस पर हमारे लोकतांत्रिक गणराज्य की नींव सुरक्षित रूप से टिकी हुई है। और, इसलिए, इसे संकीर्ण, पांडित्यपूर्ण या शब्दकोषीय दृष्टिकोण के अधीन नहीं किया जाना चाहिए। इसके सर्वव्यापी दायरे और अर्थ को सीमित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना इसके सक्रिय परिमाण का उल्लंघन होगा। समानता एक गतिशील अवधारणा है जिसके कई पहलू और आयाम हैं और इसे पारंपरिक और सिद्धांतवादी सीमाओं में कैद नहीं किया जा सकता। हमें यहाँ वही दोहराना होगा जो ई.पी. रॉयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य [(1974) 4 एससीसी 3: 1974 एससीसी (एल एंड एस) 165: (1974) 2 एससीआर 348] अर्थात्, "सकारात्मक दृष्टिकोण से, समानता मनमानी के विपरीत है। वास्तव में समानता और मनमानी एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन हैं; एक गणतंत्र में कानून के शासन से संबंधित है, जबकि दूसरा एक निरंकुश सम्राट की सनक और मनमानी से संबंधित है। जहाँ कोई कार्य मनमाना है, वहाँ यह निहित है कि यह राजनीतिक तर्क और संवैधानिक कानून, दोनों के अनुसार असमान है और इसलिए अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है"। अनुच्छेद 14 राज्य की कार्यवाही में मनमानी पर प्रहार करता है और निष्पक्षता तथा व्यवहार की समानता सुनिश्चित करता है। तर्कसंगतता का सिद्धांत, जो कानूनी और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से समानता या मनमानी न करने का एक अनिवार्य तत्व है, अनुच्छेद 14 में एक सर्वव्यापी रूप से व्याप्त है और अनुच्छेद 21 द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया को अनुच्छेद 14 के अनुरूप होने के लिए तर्कसंगतता की कसौटी पर खरा उतरना होगा। यह "सही, न्यायसंगत और निष्पक्ष" होनी चाहिए, न कि मनमाना, काल्पनिक या दमनकारी; अन्यथा, यह कोई प्रक्रिया नहीं होगी और अनुच्छेद 21 की आवश्यकता पूरी नहीं होगी..." (जोर दिया गया)

24. जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम त्रिलोकी नाथ खोसा¹⁶ पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने विजय लक्ष्मी बनाम पंजाब विश्वविद्यालय में निम्नलिखित टिप्पणी की:---

"8. यह भी देखा गया कि भेदभाव वर्गीकरण का सार है और समानता की संवैधानिक गारंटी पर केवल तभी हमला करता है जब यह अनुचित आधार पर टिका हो और यह प्रतिवादियों पर निर्भर था कि वे यह स्थापित करें कि वर्गीकरण अनुचित था और इसके कथित उद्देश्य के साथ कोई तर्कसंगत संबंध नहीं था। इसके अलावा, समानता के अधिकार से निराकरण करते हुए, न्यायालय ने (पैरा 29 और 30 में) इस प्रकार माना: (एससीसी पृष्ठ 33) "लेकिन समानता की अवधारणा

में संवैधानिक गारंटी की प्रकृति से उत्पन्न एक अंतर्निहित सीमा है। समानता समान के लिए है। यह कहना है कि जो लोग समान परिस्थितियों में हैं वे समान उपचार के हकदार हैं।

25. शायरा बानो बनाम भारत संघ मामले में एक संविधान पीठ ने तीन तलाक के मुद्दे पर विचार करते हुए अनुच्छेद 14 का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया:—

“62. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14, संविधान की प्रस्तावना में वर्णित स्थिति और अवसर की समानता का एक पहलू है। यह अनुच्छेद स्वाभाविक रूप से दो भागों में विभाजित है (1) विधि के समक्ष समानता, और (2) विधि का समान संरक्षण। इस न्यायालय के निर्णयों में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि विधि के समक्ष समानता की अवधारणा ब्रिटेन के कानून से ली गई है, और विधियों का समान संरक्षण संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के 14 वें संशोधन से उधार लिया गया है। एक महत्वपूर्ण निर्णय में, न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय, (1961) 1 एससीआर 14: एआईआर 1960 एससी 1125: 1960 क्रि एलजे 1504], एआईआर पृष्ठ 1134 पैरा 26: एससीआर के पृष्ठ 34 में आगे कहा गया है कि जहाँ विधि के समक्ष समानता एक नकारात्मक अवधारणा है, वहीं विधि के समान संरक्षण का सकारात्मक अर्थ है। इस न्यायालय के प्रारंभिक निर्णयों में अनुच्छेद 14 के "भेदभाव" पहलू का उल्लेख किया गया था और एक नियम विकसित किया गया था जिसके द्वारा विषयों का वर्गीकरण किया जा सकता था। यदि वर्गीकरण प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए "बोधगम्य" था, तो यह अनुच्छेद 14 के भेदभाव-विरोधी पहलू के अंतर्गत मान्य होगा। पुनः, न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने, लक्ष्मण दास बनाम पंजाब राज्य [लछ्मन दास बनाम पंजाब राज्य, (1963) 2 एससीआर 353: एआईआर 1963 एससी 222], एससीआर के पृष्ठ 395 में असहमति व्यक्त करते हुए चेतावनी दी कि: (एआईआर पृष्ठ 240, कंडिका 50) "

50. वर्गीकरण के सिद्धांत पर अत्यधिक बल या उसके लिए कोई आधार खोजने का एक उत्सुक और निरंतर प्रयास वर्गीकरण धीरे-धीरे और अगोचर रूप से लेख को उसकी शानदार सामग्री से वंचित कर सकता है..." (जोर दिया गया)

26. अनुच्छेद 14 के अंतर्गत समानता पर यह चर्चा, जिसमें लैंगिक समानता का पहलू भी शामिल है, हमारे विचार से, हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के माध्यम से हिंदू विधि के अंतर्गत उठाए गए पहले और सबसे सराहनीय कदम का उल्लेख किए बिना अधूरी रहेगी, जिसने बेटियों को संयुक्त परिवार की संपत्ति में सहदायिक बनाया। विधेयक में बताए गए उद्देश्य और कारण सामान्य अर्थों में शिक्षाप्रद हैं और हम उन्हें लाभ के साथ पुनः प्रस्तुत करते हैं:—

..पुत्री को सहदायिक स्वामित्व में भाग लेने से बाहर रखने वाला कानून न केवल लिंग के आधार पर उसके साथ भेदभाव को बढ़ावा देता है, बल्कि संविधान द्वारा गारंटीकृत समानता के उसके मौलिक अधिकार के उत्पीड़न और हनन का कारण भी बनता है। महिलाओं को सामाजिक न्याय प्रदान करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्यों ने हिंदू मिताक्षरा सहदायिक संपत्ति में पुत्रीयों को समान अधिकार देने वाले कानून में आवश्यक परिवर्तन किए हैं। केरल विधानमंडल ने केरल संयुक्त हिंदू परिवार प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1975 पारित किया है..." (जोर दिया गया)

27. इसी प्रकार, हमारा यह भी मानना है कि, जब तक कानून में अन्यथा निर्दिष्ट न हो, महिला उत्तराधिकारी को संपत्ति में अधिकार देने से इनकार करना केवल लैंगिक विभाजन और भेदभाव को बढ़ाता है, जिसे कानून को समाप्त करना चाहिए।

28. यह सच है कि अपीलकर्ता-वादी द्वारा महिला उत्तराधिकार की ऐसी कोई प्रथा स्थापित नहीं की जा सकी, लेकिन फिर भी यह भी उतना ही सत्य है कि इसके विपरीत कोई प्रथा भी ज़रा भी साबित नहीं की जा सकी, और साबित करना तो दूर की बात है। ऐसे में, धैया को उसके पिता की संपत्ति में हिस्सा देने से इनकार करना, जब यह प्रथा मौन है, उसके अपने भाइयों या उसके कानूनी उत्तराधिकारियों के अपने चचेरे भाई के साथ समानता के अधिकार का उल्लंघन होगा।

29. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा दृढ़ मत है कि न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों के अनुरूप, संविधान के अनुच्छेद 14 के व्यापक प्रभाव के साथ, अपीलकर्ता-वादी, धैया के विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते, संपत्ति में समान हिस्सेदारी के हकदार हैं। तदनुसार, विचारण न्यायालय के निर्णयों को उसी सीमा तक रद्द किया जाता है। तदनुसार, सिविल अपील स्वीकार की जाती है। लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निराकरण किया जाएगा।

30. वाद व्यय हेतु कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

नई दिल्ली; 17 जुलाई, 2025।

(संजय करोल)

न्यायाधीश

(जयमाल्या बागची)

न्यायाधीश

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।